अपठित गद्यांश (प्राकृत)

1. सिप्पीपुत्तस्स कहा

इस पाठ का मूल उद्देश्य कर्म के प्रति रुचि उत्पन्न करना है। धर्म, अर्थ,काम एवं मोक्ष इन चार पुरुषार्थों का जीवन में अत्यधिक महत्त्व है। जिस व्यक्ति का जीवन कर्म एवं पुरुषार्थ से हीन होता है, वह समाज में कुछ नहीं कर पाता। जब्कि आचारवान, श्रद्धावान व कर्मवान सदैव जगत् में सुखी रहते हैं। **'शिल्पी पुत्र का कथानक'** *नामक पाठ से यह शिक्षा मिलती है कि जीवन में धर्म का आश्रय अत्यन्त आवश्यक है। जितनी जल्दी हो सके हमें अपने जीवन में कर्म को अपना लेना चाहिए, क्योंकि कर्म को अपनाये बिना अपना लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सकते। इस दृष्टि से हमें हर कर्म में परिपक्व होना चाहिए।*

पाठ–परिचय

श्रमण भगवान् महावीर ने अपने उपदेशों में प्राकृत भाषा का प्रयोग किया तथा उपदेशों को प्रभावी बनाने की दृष्टि से कथाओं का आश्रय उन्होंने लिया। इसी शृंखला में आचार्यों ने भी उपदेशों में कथाओं का आश्रय लिया है। **'शिल्पी पुत्र का कथानक'** भी जनसभाओं के रूप में प्रचलित होने के कारण प्राकृत भाषा के विद्वान् आचार्य श्री विजयकस्तूर सूरीश्वर जी म. सा. ने इस कथा को सृजित किया है तथा जिसे मुनि श्री जयचन्द विजय म. सा. ने **'पाइयविण्णाण कहा'** नामक कथासंग्रह में सम्पादित किया है मास्तर जसवन्तलाल गीरधरलाल, अहमदाबाद से ई0 1967 में प्रकाशित यह कथा हमें यह शिक्षा देती है कि हमें सदैव *पुरुषार्थ एवं* कर्म करते रहना चाहिए, जिससे हम समाज में अपना अस्तित्त्व बनाए रख सकें।

(मूल पाठ)

पिउणा सिक्खिओ पुत्तो पारं जाइ कलद्धिणो।
वण्णिओ जइ नो होज्जा जह सिप्पिअअंगओ।।

अवंतीए पुरीए इंददत्तो नाम सिप्पिवरो अहेसि, सो सिप्पकलाहिं सव्वंमि जयंमि पसिद्धो होत्था। इमस्स सरिच्छो अन्नो को वि नत्थि। एयस्स पुत्तो सोमदत्तो नाम। सो पिउस्स सगासंमि सिप्पकलं सिक्खंतो कमेण पिउराओ वि अईव सिप्पकलाकुसलो जाओ। सोमदत्तो जाओ जाओ पडिमाओ निम्मवेइ, तासु तासु पिया कंपि भुल्लं दंसेइ, कया वि सिलाहं न कुणेइ। तओ सो सुहुमदिट्ठीए सुहुमसुहुमं सिप्पकिरियं कुणेऊण पियरं दंसेइ, पिया वि तत्थ वि कंपि खलणं दरिसेइ, 'तुमए सोहणयरं सिप्पं कयं' ति न कयाइ तं पसंसेइ। अपसंसमाणे पिउम्मि सो चिंतेइ–'मम पिआ मज्झ कलं कहं न पसंसेज्जा?' तओ एआरिसं उवायं करेमि, जेण पियरो में कलं पसंसेज्ज।

एगया तस्स पिआ कज्जप्पसंगेण गामंतरे गओ, तया सो सोमदत्तो सिरिगणेसस्स सुंदरयमं पडिमं काऊण, पडिमाए हिट्ठंमि गूढं नियनामंकियचिन्हं करिऊण, तं मुत्तिं नियमित्तद्दारेण भूमीए अंतो निक्खेव कारेइ। कालंतरे गामंतराओ पिया

समागओ। एगया तस्स मित्तो जणाणमग्गओ एवं कहेइ–'अज्ज मम सुमिणो समागओ, तेण अमुगाए भूमीए गणेसस्स पहावसालिणी पडिमा अत्थि।' तथा लोगेहिं सा पुढवी खणिआ, तीए पुहवीए गणेसस्स सुंदरयमा अणुवमा मुत्ती निग्गया। तद्दंसणत्थं बहवे लोगा समागया, तीए सिप्पकलं अईव पसंसिरे।

तया सो इंददत्तो वि सपुत्तो तत्थ समागओ। तं गणेसपडिमं दट्ठूणं पुत्तं कहेइ–"हे पुत्त! एसच्चिअ सिप्पकला कहिज्जइ। केरिसी पडिमा निम्मविआ, इमाए निम्मावगो खलु धण्णयमो सलाहणिज्जो य अत्थि। पासेसु, कत्थ वि भुल्लं खुण्णं च अत्थि? जइ तुमं एआरिसी पडिमं निम्मवेज्ज, तया ते सिप्पकलं पसंसेमि, नन्नहा।"

पुत्तो वि कहेइ–"हे पियर! एसा गणेसपडिमा मम कया। इमाए हिट्ठंमि गुत्तं मए नामंपि लिहिअमत्थि।" पिआवि लिहिअनामं वाइऊण खिज्जहियओ पुत्तं कहेइ–"हे पुत्त! अज्जयणाओ तुं एरिसं सिप्पकलाजुत्तं सुंदरयमं पडिमं कया वि न करिस्ससि, जओ हं तव सिप्पकलासु भुल्लं दंसतो, तया तुमं पि सोहणयरकज्जकरणतल्लिच्छो सण्हं सण्हं सिप्पं कुणंतो आसि, तेण तव सिप्पकलावि वड्ढती हुवीअ। अहुणा 'मम सारिच्छो नन्नो' इह मंदूसाहेण तुम्ह एआरसी सिप्पकला न संभविहिइ।" एवं सो सरहस्सं पिउवयणं सोच्चा पाएसु पडिऊण पिउत्तो पसंसाकरावणरूवनिआवराहं खामेइ, परंतु सो सोमदत्तो तओ आरब्भ तारिसिं सिप्पकलं काउं असमत्थो जाओ।

उवएसो **दिट्ठंतं सिप्पिपुत्तस्स नच्चा गुणगणप्पयं। पुज्जाणं वयणं सोच्चा पडिऊलं न चिंतह।।**

(हिन्दी अर्थ)

शिल्पी–पुत्र की कथा

पिता के द्वारा सिखाया जाता हुआ कला की सम्पदा से युक्त पुत्र पार पा जाता, यदि आत्मश्लाघा नहीं करता, जैसे शिल्पी का पुत्र।

अवन्ती नगरी में इन्द्रदत्त नाम का श्रेष्ठ शिल्पी था (रहता था)। वह शिल्पकलाओं से सम्पूर्ण जगत् में प्रसिद्ध था। इसके समान दूसरा कोई भी नहीं था। इसका सोमदत्त नाम का पुत्र (था)। वह पिता के पास शिल्पकला सीखता हुआ क्रमशः पिता से भी शिल्पकला में अधिक कुशल हो गया। सोमदत्त जिन–जिन प्रतिमाओं को बनाता है, उनमें पिता कुछ भी (कोई–न–कोई) भूल दिखाता था, कभी भी प्रशंसा नहीं करता। तब वह सूक्ष्म दृष्टि से (बारीक–बारीक) शिल्पक्रिया करके पिता को दिखाता, पिता भी वहाँ पर कुछ स्खलना दिखा देता, 'तुमने सुन्दरतर शिल्प किया' ऐसा कभी भी उसकी प्रशंसा नहीं करता था। पिता के द्वारा प्रशंसा नहीं किये जाने पर वह सोचता है–मेरा पिता मेरी कला की प्रशंसा क्यों नहीं करता? अतः ऐसा उपाय करूँ, जिससे पिता मेरी कला की प्रशंसा करे।

एक बार उसका पिता कार्य के प्रसंग से अन्य ग्राम में गया, तब वह सोमदत्त श्रीगणेश की सुन्दरतम प्रतिमा बनाकर, प्रतिमा के नीचे गुप्त रूप से अपने नाम को अंकित कर उस मूर्ति को अपने मित्र के द्वारा भूमि के भीतर गड़वा दिया। कालान्तर में ग्रामान्तर से पिता आ गया। एक बार उसका मित्र लोगों के आगे ऐसा कहता है–आज मुझे स्वप्न आया, जैसाकि अमुक भूमि में गणेश की प्रभावशाली प्रतिमा है। तब लोगों ने उस जमीन को खोदा, उस जमीन में गणेश के सुन्दरतम और अनुपम मूर्ति निकली। उसके दर्शन के लिए बहुत सारे लोग आये। उसके (उस प्रतिमा के) शिल्पकला की अति प्रशंसा की।

तब वह इन्द्रदत्त भी पुत्र के साथ गया। उस गणेश–मूर्ति को देखकर पुत्र को कहता है–हे पुत्र! इसे ही शिल्पकला कहते हैं। कैसी प्रतिमा बनायी गयी है, इसका निर्माता निश्चय ही धन्यतम और श्लाघनीय है। देखो, कहीं पर भी भूल (अथवा) और कमी है? यदि तुम ऐसी प्रतिमा का निर्माण करोगे तो तुम्हारी शिल्पकला की प्रशंसा करूँगा, अन्यथा नहीं।

पुत्र भी कहता है–हे पिता! यह गणेश–प्रतिमा मेरे द्वारा ही बनाई गई है। इसके नीचे गुप्त रूप से मेरा नाम भी लिखा हुआ है। पिता भी लिखित नाम को पढ़कर खिन्न हृदय से पुत्र को कहता है–हे पुत्र! आज से तुम ऐसी शिल्पकला से युक्त सुन्दरतम प्रतिमा को कभी भी नहीं कर सकोगे, क्योंकि मैं तुम्हारी शिल्पकलाओं में भूल दिखाता था, तब तुम भी सुन्दरतम कार्य करने में लीन होकर अत्यंत सूक्ष्म शिल्प को करते थे, जिससे तुम्हारी शिल्पकला भी बढ़ रही थी। अब 'मेरे समान अन्य नहीं है' इस प्रकार मन्द उत्साह से तुम ऐसी शिल्पकला नहीं कर सकोगे। इस प्रकार वह रहस्ययुक्त पिता के वचन को सुनकर पैरों में गिरकर इस अपराध के लिए क्षमा–याचना करता है, किंतु वह सोमदत्त तब से लेकर उस प्रकार की शिल्पकला को करने में असमर्थ हो गया।

उपदेश–विविध गुण–पद से युक्त शिल्पी–पुत्र के दृष्टान्त को जानकर और पूज्यों के वचन को सुनकर प्रतिकूल चिन्तन नहीं करना चाहिए।

शब्दार्थ

सगासंमि–समीप में	अहेसि–था, रहता था
होत्था–था	सिलाहं–प्रशंसा, श्लाघा
गूढं–गुप्त	अमुगाए–अमुक
वाइऊण–पढ़कर, बांचकर	अज्जयणआ–आज से
खणिआ–(खनिता) खोदी गई	खुण्णं–कमी, गलती
नन्नो–(न अन्य) दूसरा नहीं	नियनामंकियचिन्हं–अपना नाम लिखकर

सोहणयरकज्जकरणतच्छिल्ला–सुन्दरतर कार्य करने में तल्लीन।

पसंसाकरावणरूवनिआवराहं–प्रशंसा कराने के अपने अपराध को

अभ्यास

(1) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(क) ....पुरी में श्रेष्ठ शिल्पी रहता था।

(ख) शिल्पी का नाम..था।

(ग) शिल्पी के पुत्र का नाम..था।

(घ) शिल्पीपुत्र ने....................................की प्रतिमा बनाई।

(2) निबन्धात्मक प्रश्न

(1) शिल्पी–पुत्र की कथा से मिलने वाली शिक्षाओं को लिखें।

(2) प्रस्तुत पाठ के आधार पर बताएं कि पिता की विचारधारा अपने पुत्र के प्रति उपयुक्त थी अथवा अनुपयुक्त।

3. विउसीए पुत्तबहुए कहाणगं

*इस पाठ का मूल उद्‌देश्य धर्म के प्रति रुचि उत्पन्न करना है। जिस व्यक्ति का जीवन धर्म एवं आचार से हीन होता है, उसका समाज में सम्मान नहीं होता। जब्कि आचारवान, श्रद्धावान व धर्मवान सदैव जगत् में सुखी रहते हैं। **'विदुषी पुत्रवधू का कथानक'** नामक पाठ से यह शिक्षा मिलती है कि जीवन में धर्म का आश्रय अत्यन्त आवश्यक है। जितनी जल्दी हो सके हमें अपने जीवन में धर्म को अपना लेना चाहिए, क्योंकि जो जितनी जल्दी धर्म को अपनाता है, वह उतना ही उम्र कह दृष्टि से परिपक्व हो जाता है।*

पाठ–परिचय

प्राकृत कथा साहित्य अतिसमृद्ध एवं विशाल है। इसमें जीवन के विविध पक्षों को उद्‌घाटित किया गया है। श्रमण भगवान् महावीर ने अपने उपदेशों में प्राकृत भाषा का प्रयोग किया तथा उपदेशों को प्रभावी बनाने की दृष्टि से कथाओं का आश्रय उन्होंने लिया। इसी श्रृंखला में आचार्यों ने भी उपदेशों में कथाओं का आश्रय लिया है। **'विदुषी पुत्रवधू का कथानक'** भी जनसभाओं के रूप में प्रचलित होने के कारण प्राकृत भाषा के विद्वान् आचार्य श्री विजयकस्तूर सूरीश्वर जी म. सा. ने इस कथा को सृजित किया है तथा जिसे मुनि श्री जयचन्द विजय म. सा. ने **'पाइयविण्णाण कहा'** नामक कथासंग्रह में सम्पादित किया है मास्तर जसवन्तलाल गीरधरलाल, अहमदाबाद से ई0 1967 में प्रकाशित यह कथा हमें यह शिक्षा देती है कि हमें अल्पकाल से ही धर्माचरण कर लेना चाहिए, जिससे हम अपनी गति सुधार सकें।

(मूल पाठ)

कालो गओ जो धम्मम्मि सो णेओ सहलो च्चिअ।
निप्फलो सयलो सेसो बहू एत्थ निदंसणं।।

कम्मि नयरे लच्छीदासो सेट्ठी वरीवट्टइ। सो बहुधणसंपत्तीए गव्विट्ठोआसि। भोगविलासेसु एव लग्गो कयावि धम्मं ण कुणेइ। तस्स पुत्तो वि एयारिसो अत्थि। जोव्वणे पिउणा धम्मिअस्स धम्मदत्तस्स जहत्थनामाए सीलवईए कन्नाए सह पाणिग्गहणं पुत्तस्स कारावियं। सा कन्ना जया अट्ठवासा जाया, तया तीए पिउपेरणाए साहुणीसगासाओ सव्वण्णध म्मसवणेण सम्मत्तं अणुव्वयाइं, य गहीयाइं, सव्वण्णधम्मे अईव निउणा संजाआ।

जया सा ससुरगेहे आगया तया ससुराइं धम्माओ विमुहं दट्‌ठूण तीए बहुदुहं संजायं। कहं मम नियवयस्स निव्वाहो होज्जा? कहं वा देवगुरुविमुहाणं ससुराईणं धम्मोवएसो भवेज्जा, एवं सा वियारेइ।

एगया 'संसारो असारो, लच्छी वि असारा, देहोवि विणस्सरो, एगो धम्मो च्चिय परलोगपवन्नाणं जीवाणमाहारु' त्ति उपएसदाणेण नियभत्ता सव्वण्णधम्मेण वासिओ कओ। एवं सासूमवि कालंतरे बोहेइ। ससुरं पडिबोहिउं सा समयं मग्गेइ।

एगया तीए घरे समणगुणगणालंकिओ महव्वई नाणी जोव्वणत्थो एगो साहू भिक्खत्थं समागओ। जोव्वणे वि गहीयवयं संतं दंतं साहूं घरंमि आगयं दटठूणं आहारे विज्जमाणं वि तीए वियारियं–'जोव्वणे महव्वयं महादुल्लहं, कहं एएण एयंमि जोव्वणत्तणे गहीयं?'' ति परिक्खत्थं समस्साए पुट्ठं–'अहुणा समओ न संजाओ, किं पुव्वं निग्गया?' तीए हिययगयभावं नाऊण साहूणा उत्तं–''समयनाणं–कया मच्चू होस्सइ त्ति नत्थि नाणं, तेण समयं विणा निग्गओ।'' सा

उत्तरं नाऊण तुट्ठा। मुणिणा वि सा पुट्ठा–'कइ वरिसा तुम्ह संजाया?' मुणिस्स पुच्छाभावं नाऊण वीसवासेसु जाएसु वि तीए 'बारसवास' त्ति उत्तं। पुणरवि 'ते सामिस्स कइ वासा जातं' त्ति? पुट्ठं। तीए पियस्स पणवीसवासेसु जाएसु वि पंचवासा उत्ता, एवं सासूए 'छम्मासा' कहिया। ससुरस्स पुच्छाए सो 'अहुणा न उप्पण्णो अत्थि' ति भणिआ।

एवं बहू–साहूणं वट्टा अंतट्ठिएण ससुरेण सुआ। लद्धभिक्खे साहुंमि गए सो अईव कोहाउलो संजाओ, जओ पुत्तबहु मं उद्दिस्सं 'न जाउ' त्ति कहेइ। रुट्ठो सो पुत्तस्स कहणत्थं हट्टं गच्छइ। गच्छन्तं ससुरं सा वएइ–'भोत्तूणं हे ससुर! तुं गच्छसु।' ससुरो कहेइ–'जइ हं न जाओ म्हि, तया कहं भोयणं चव्वेमि–भक्खेमि' इअ कहिऊण हट्टे गओ। पुत्तस्स सव्वं वुत्तंतं कहेइ–'तव पत्ती दुरायारा असब्भवयणा अत्थि, अओ तं गिहाओ निक्कासय।'

सो पिउणा सह गेहे आगओ। बहुं पुच्छइ–'किं माउपिउणो अवमाणं कयं? साहुणा सह वट्टा किं असच्चमुत्तरं दिण्णं?' तीए उत्तं–'तुम्हे मुणिं पुच्छह, सो सव्वं कहिहिइ।' ससुरो उवस्सए गंतूण सावमाणं मुणिं पुच्छइ–'हे मुणे, अज्ज मम गेहे भिक्खत्थं तुम्हे किं आगया?' मुणी कहेइ–'तुम्हाण घरं ण जाणामि, तुमं कुत्थ वससि?' सेट्ठी वियारेइ 'मुणी असच्चं कहेइ।' पुणरवि पुट्ठं–'कत्थ वि गेहे बालाए सह वट्टा कया किं?' मुणी कहेइ–'सा बाला अईव कुसला, तीए मम वि परिक्खा कया।' तीए हु वुत्तो–'समयं विणा कहं निग्गओ सि?' मए उत्तरं दिण्णं–''समयस्स–'मरणसमयस्स' नाणं नत्थि, तेण पुव्ववयम्मि निग्गओ म्हि।'' मए वि परिक्खत्थं सव्वेसिं ससुराईणं वासाइं पुट्ठाइं। तीए सम्मं कहियाइं। सेट्ठी पुच्छइ–'ससुरो न जाओ इअ तीए किं कहियं?' मुणिणा उत्तं–'सा चिय पुच्छिज्जउ, जओ विउसीए तीए जहत्थो भावो नज्जइ।'

ससुरो गेहं गच्चा पुत्तनहुं पुच्छइ–'तीए मुणिस्स पुरओ किमेवं वुत्तं–मे ससुरो जाओ वि न।' तीए उत्तं–''हे ससुर, धम्महीणमणुसस्स माणवभवो पत्तो वि अपत्तो एव, जओ सद्धम्मकिच्चेहिं सहलो भवो न कओ सो मणुसभवो निप्फलो चिय। तओ तुम्ह जीवणं पि धम्महीणं सव्वं गयं। तेण मए कहिअं–मम ससुरस्स उप्पत्ती एव न।'' एवं सच्चत्थाणे तुट्ठो धम्माभिमुहो जाओ। पुणरवि पुट्ठं–'तुमए सासूए छम्मासा कहं कहिआ?' तीए उत्तं–'सासुं पुच्छह।' सेट्ठिणा सा पुट्ठा। ताए वि कहिअं–''पुत्तवहूण वयणं सच्चं, जओ मम सव्वण्णुधम्मपत्तीए छम्मासा एव जाया, जओ इओ छम्मासाओ पुव्वं कत्थ वि मरणपसंगे अहं गया। तत्थ थीणं विविहगुणदोसवट्टा जाया।''

एगाए वुड्ढाए उत्तं–'नारीण मज्झे इमीए पुत्तवहू सेट्ठा। जोव्वणवए वि सासूभत्तिपरा धम्मकज्जम्मि स एव अपमत्ता, गिहकज्जेसु वि कुसला नन्ना एरिसा। इमीए सासू निब्भगा, एरिसीए भत्तिवच्छलाए पुत्तबहूए वि धम्मकज्जे पेरिज्जमाणावि ध म्मं न कुणेइ, इमं सोऊण बहुगुणरंजिआ तीए मुहाओ धम्मो पत्तो। धम्मपत्तीए छम्मासाा जाया, तओ पुत्तवहूए छम्मासा कहिआ, तं जुत्तं।''

पुत्तो वि पुट्ठो, तेण वि उत्तं–''रत्तीए समयधम्मोवएसपराए भज्जाए संसारासारदंसणेण भोगविलासाणं च परिणामदुहदाइत्त–णेण वासाईपूरतुल्लजुव्वणत्तणेण य देहस्स खणभंगुरत्तणेण जयम्मि धम्मो एव सारु त्ति उवदिट्ठो हं सव्वण्णुधम्माराहगो जाओ, अज्ज पंचवासा जाया। तओ वहूए मं उद्दिस्स पंचवासा कहिआ, तं सच्चं।'' एवं कुडुंबस्स धम्मपत्तीए वट्टाए विउसीए य पुत्तवहूए जहत्थवयणं सोऊण लच्छीदासो वि पडिबुद्धो वुड्ढत्तणे वि धम्मं आराहिअ सग्गइं पत्तो सपरिवारो।

उवएसो–

सीलवईअ दिट्ठंतं ससुराइविवोहगं।
सोच्चा धम्मेण अप्पाणं वासिअं कुण सव्वया।।

(हिन्दी अर्थ)

जो काल धर्म में बीता वही सफल है, शेष सभी समय निष्फल है। बहु का यह निदर्शन जानना चाहिए।

किसी नगर में लक्ष्मीदास नाम का सेठ रहता था। वह बहुत अधिक धन–सम्पत्ति के कारण अहंकारी हो गया था। निरन्तर भोग–विलास में आसक्त रहने के कारण वह कभी धर्मकार्य नहीं करता था। उसका पुत्र भी ऐसा ही था। जब वह युवावस्था को प्राप्त हुआ, तब उसके पिता ने धर्मदास नाम के एक धर्मात्मा की शीलवती नाम की पुत्री के साथ उसका विवाह करा दिया। वह कन्या जब आठ वर्ष की थी, तभी उसने अपने पिता की प्रेरणा से एक साध्वी के पास सर्वज्ञ–धर्म का श्रवण कर विधिपूर्वक अणुव्रतों को धारण कर लिया था और इस प्रकार वह सर्वज्ञ–धर्म में बहुत ही निपुण हो गई थी।

जब वह ससुराल आई तब ससुर आदि को धर्म से विमुख देखकर अतीव दुःखी हुई। यहां मेरे व्रत का निर्वाह कैसे होगा? देव एवं गुरु से विमुख ससुर आदि के लिए धर्मोपदेश कैसे दिया जाए, ऐसा वह विचार करने लगी। एक बार संसार असार है, लक्ष्मी भी सारविहीन है, यह देह भी विनाशशील है, केवल एक धर्म ही है, जो मिथ्यात्व से परलोक सुधारने की इच्छा रखने वाले जीवों के लिए श्रेष्ठ आधार है, इस प्रकार का उपदेश देकर उसने अपने पति को सर्वज्ञ–धर्म से वासित कर लिया। इसी प्रकार किसी समय सास को भी प्रतिबोधित कर लिया तथा ससुर को प्रतिबोधित करने के लिए अवसर की खोज में रहने लगी।

एक बार उसके घर में श्रमण के गुणों से अलंकृत, महाव्रती और ज्ञानी यौवन में स्थित एक साधु भिक्षा के लिए आया। युवावस्था में भी व्रतों को धारण कर लेने वाले, शान्त एवं दान्त साधु को घर में आया देखकर आहार के रहने पर भी उसने विचार किया–यौवन में महाव्रत को स्वीकार करना महान् दुर्लभ है, कैसे इसने इस यौवनावस्था में ग्रहण कर लिया? परीक्षा करने के लिए समस्या के रूप में साधु से पूछा–अभी समय नहीं हुआ, फिर पहले कैसे निकल गये? उसके हृदयगत भाव को जानकर साधु ने कहा–''समय ही ज्ञान है, कब मृत्यु हो जाये ऐसा ज्ञान नहीं होता, अतः समय के बिना ही निकल गया।'' वह वधू उत्तर सुनकर संतुष्ट हो गई। मुनि ने भी उसे पूछा–तुम कितने वर्षों की हो गई? मुनि के पूछने के भाव को जानकर बीस वर्ष के होने पर भी उसने कहा–बारह वर्ष की हूं। पुनः साधु ने उससे पूछा–तुम्हारा पति कितने वर्ष का है? पति के पच्चीस वर्ष के होने पर भी पांच वर्ष का है, कहा, इसी प्रकार सास को छः महीने का बताया। ससुर के बारे में पूछने पर कहा–वह अभी उत्पन्न ही नहीं हुए हैं।

इस प्रकार बहू और साधु के वार्तालाप को ससुर ने भीतर से सुन लिया। भिक्षा प्राप्त कर जब साधु चला गया तब वह (ससुर) अत्यधिक क्रोध से आकुल हो गया कि पुत्रवधू मुझे उत्पन्न नहीं हुआ ऐसा कहती है। रुष्ट होकर वह पुत्र को कहने के लिए दुकान जाने लगा। जाते हुए ससुर को वह कहती है–हे ससुर! भोजन करके जाना। ससुर कहता है–यदि मैं जन्मा ही नहीं हूं तो कैसे भोजन चबाऊंगा तथा कैसे खाऊंगा, ऐसा कहकर दुकान में चला गया। जाकर पुत्र को सारी घटना कहता है–तुम्हारी पत्नी दुराचारिणी तथा असत्य वचन बोलने वाली है, अतः उसको घर से निकाल दो। वह पिता के साथ घर आ गया। बहू को पूछता है–क्यों माता–पिता का अपमान किया? साधु के साथ वार्तालाप में क्या असत्य उत्तर दिया? उसने कहा–तुम मुनि को ही पूछ लो, वह सब कुछ कह देगा। ससुर उपाश्रय में जाकर अपमान करता हुआ मुनि को पूछता है–हे मुनि! आज मेरे घर में भिक्षा लेने के लिए क्यों आए थे? मुनि कहता है–तुम्हारा घर नहीं जानता, तुम कहां रहते हो? सेठ सोचता है–मुनि असत्य कह रहा है। पुनः पूछता है–किसी घर में युवती के साथ वार्ता की थी? मुनि कहता है–वह युवती अति कुशल है, उसने मेरी भी परीक्षा की। उसने मुझसे पूछा–समय बिना कैसे निकले? मैंने उत्तर दिया–समय का अर्थात् मरणकाल का ज्ञान नहीं है, अतः पूर्वदय (यौवनावस्था) में ही निकल गया हूं। मैंने भी परीक्षा लेने

के लिए ससुरादि के उम्र के बारे में पूछा। उसने सम्यक् उत्तर दिये। सेठ पूछता है—ससुर नहीं जन्मा है, ऐसा उत्तर उसने कैसे दियाध मुनि कहता है—उससे ही पूछो, क्योंकि वह विदुषी है, यथार्थ के भाव को जानती है।

ससुर घर आकर पुत्रवधू से पूछता है—उस मुनि के सामने तुमने कहा कि मेरा ससुर जन्मा ही नहीं है। उसने उत्तर दिया—हे ससुर! धर्म से रहित मनुष्य, मनुष्य भव प्राप्त करके भी अप्राप्त के समान है, क्योंकि सधर्म कार्यों से भव को सफल नहीं किया, मनुष्य जन्म निष्फल ही हो गया। अतः आपका जीवन भी धर्म से रहित होकर पूर्ण चला गया इसलिए मैंने कहा—मेरे ससुर का जन्म ही नहीं हुआ है। इस प्रकार सत्य अर्थ को सुनकर वह धर्माभिमुख हो गया।

पुनः पूछता है—तुमने सासु को छः महीने की ही कैसे कहा? उसने कहा—सासु से ही पूछ लीजिये। सेठ ने उससे पूछा तो सासु ने कहा कि पुत्रवधू के वचन सत्य हैं, क्योंकि मुझे सर्वज्ञधर्म स्वीकार किये हुए छः महीने ही हुए हैं अतः छः महीने के पूर्व के समय मेरे नष्ट हो गये।

उस नगर में जिस समय उस पुत्रवधू के विविध गुणों की चर्चा होने लगी तभी एक वृद्धा ने कहा था—नारियों में वही पुत्रवधू श्रेष्ठ है। यौवनावस्था में भी सास की भक्ति करती है और धर्मकार्यों में भी अप्रमत्त है। गृहकार्य में कुशल है। इसकी सासु भाग्यहीन है, ऐसी भक्ति—वत्सल पुत्रवधू के द्वारा धर्मकार्य में प्रेरित किये जाने पर भी धर्म नहीं करती, यह सुनकर बहू के गुणों से प्रसन्न हो उसके समक्ष, धर्म को स्वीकार कर लिया। धर्म स्वीकार को छः महीने ही हुए हैं, अतः पुत्रवधू ने छः महीने का जो कहा वह युक्त है।

पुत्र को भी पूछा, उसने कहा—रात्रि में सदैव धर्मोपदेश देने के क्रम में आपकी पुत्रवधू ने मुझे बताया कि यह संसार असार है। भोग—विलास का परिणाम दुःखदायी है, बरसाती नदी के समान यौवनावस्था से युक्त देह की क्षण—भंगुरता से उत्पन्न होने वाले दुःखों से ग्रस्त इस संसार में एकमात्र धर्म ही सहायक है। ऐसा उपदेश दिये जाने पर मैं सर्वज्ञ—धर्म का अनुरागी हो गया। इसे स्वीकार किये मुझे पांच वर्ष हो गये अतः मेरी उम्र पांच वर्ष बताई वह सत्य है। इस प्रकार कुटुम्ब की धर्मप्राप्ति संबंधी वार्ता तथा विदुषी पुत्रवधू के यथार्थ वचनों को सुनकर लक्ष्मीदास प्रतिबुद्ध हो गया और वृद्धावस्था में भी धर्म—आराधनापूर्वक सम्पूर्ण परिवार सहित सद्गति को प्राप्त किया।

उपदेश—ससुरादि को प्रतिबोध देने वाली शीलवती के दृष्टान्त को सुनकर सर्वदा अपने को धर्म से भावित करो।

भाब्दार्थ

वरीवट्टइ—रहता था	गविट्ठो—गर्विष्ठ
जहत्थनामाए—यथार्थ नामवाली	जया—जब
संतं दंतं—शान्त—दान्त	एएण—इसने
जीवाणमाहरु—जीवों का आधार	बोहेइ—समझाया
होस्सइ—होगा	वट्टा—वार्ता
पुच्छिज्जउ—पूछें	गच्चा—(गत्वा) जाकर
थीणं—स्त्रियों के	वियारेइ—विचार करती है।
नज्जइ—जाना जाता है।	जयम्मि—संसार में
जहत्थवयणं—यथार्थ वचन	परिणामदुहदाइत्तणेण—परिणाम में दुःखदायी होने से।

समणगुणगणालंकिओ—श्रमण—गुणसमूह से अलंकृत

वासाणईपूरतुल्लजुव्वणत्तणेण—बरसाती नदी की बाढ़ जैसे युवावस्था से

अभ्यास

(1) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(1) विदुषी पुत्रवधू के घर .... आये।

(2) पुत्रवधू के पति की उम्र .... थी।

(3) सेठ अपने .... के पास जाता है।

(4) यौवन में .... महादुर्लभ है।

(5) ....का ज्ञान नहीं होता।

(2) निबन्धात्मक प्रश्न

(1) 'विदुषी पुत्रवधू–कथा' की नायिका का चरित्र नारी समाज के उत्थान के लिए एक अनुकरणीय आदर्श है। इस कथन की समीक्षा कीजिए।

(2) प्रस्तुत पाठ का सारांश अपनी भाषा में लिखें।

3. माया मिताणि णासइ

'माया' किं अत्थि ? इणं पण्हं समाहाणं अत्थि, माया छलकपड–रूवो अत्थि एसा बहिरंग–रूवो बहुसुंदरो अइलुहावतणं च। विणीयो आकस्सगो य माणस–माणसं। जहेट्ठम्मिसा माया अइदुक्खदाई, किलेसप्पदायगा, हिदय–घायगा मण सोग–संकुलतणं कुव्वंती य।

चउ–कसएसु इमाए तइय–ठाणं अत्थि। इमाए भासा–भासंता जीहा णत्थि, सा असिधारा अत्थि, महु–संसिलिट्ठा अत्थि। सा जीवणं परिपुट्ठं ण कुणइ, अवि तु मितणि णासइ। एसा माया होइ अणत्थाय। जहिसं अंतरम्मि मायाए अंसो हवइ तो णाणारूवं पतेह, माया जुतो सरलप्पा णत्थि। भगवईए उत्तो– मया विउव्वइ, तो अमायी विउव्वइ।

माया मिच्छादिट्ठी – जो जणो अस्सिं लोगंसि मायावी अत्थि सो "माई मिच्छादिट्ठ" इणं वयणमवि भगवईए अत्थि। अओ जो मिच्छादिट्ठी अत्थि "सो माई पमाई पुण एइ गब्भं" अहवा मायाए पुणो पुणे जम्मं च होइ। ठाणम्मि भासितो –

वंसीमूल–केतण–समाणं मायं अणुविट्ठे।
जीवे कालं करेइ णेरइएसु उववज्जंति।।

–स्था. 4/2।।

वंसस्स जडसमा माया अत्थि, जो अप्पं णइरियम्मि णयइ। मामज्जवभावेण – माया अज्जव–भावेण णस्सइ। उत्तरज्झयणे वि उत्तं – माया विजएणं अज्जवं जणयइ। मायं जो जयइ सो अज्जवभावं पत्तेइ। जइ एरिस–भावो णत्थि – तं तु जइ वि य नगिणे किसे चटे, जइ वि य भुंजित–मासमंतसो।

जे इह मायाहि मिज्जई आगंता गब्भाग णंतसो।। (सूत्र 1/2/1/91)

जेहेट्टे जो मायाए जुत्तो अत्थि सो अणंतसंसार–सायरे परिभमति। जो अज्जवभावेण जुत्तो अत्थि सो रिजुत्तणं पत्तेइ। सो एव 'तुमेव मित्तं तुमेव सत्तू' इणं वयणं णेऊण अस्सिं संसारम्मि सव्वेसिं जणाणं अप्पसम मण्णए।

4. आहारमिच्छे मियमेसणिज्जं

तजातिज्ज–विजातिज्ज–ठोस–वत्थुणो एमसमूहं 'पिउं अत्थि। तं आहार वि भसए आहारस्स चउविहो– "असणं पाणगं वा वि खाइमं साइमं तहा।" तं आहार एसणा आहारेसणा/पिंडेसणा अत्थि। तं आहारं मि– च एसण्जिं। दसवेयालयम्मि भासिओ–

जहा दुमस्स पुप्फेसु, भमरो आवियइ रस।
ण य पुप्फं किलामेइ, सो य पीणेइ अप्पयं।। –(दसवै, 1/2)

आहारस गवेसणा विहिपुव्वगं अवितव्वं। भमरसमवित्तिं पालेयव्वं। जे समणा मुत्ता अत्थि, साहगा अत्थि ते दायाए पदत्त–आहारं गिण्हेंति। जहोत्तं–

एमे ए समणा मुत्ता, जे लोए संति साहुणो।
विहंगमा व पुप्फेसु, दाण–भात्तेसणे रया।। –(दसवै. 1/2)

भिक्खाडणं–विहि–णिसेह–पुव्वगं भिक्खत्थं चरेज्ज। समभावं धारिऊण समणा या समणी आसत्ति–लालसा–इच्छा–गिद्धि परिचत्तिऊण भिक्खाडणं समाचरेज्ज। तं जहा–

संपत्ते भिक्खकालम्मि, असंभंतो अमुच्छिओ।
इमेण कमजोगेण, भत्तपाणं गवेसए।। –(दसवै. 5/83)

आयारम्मि पिंडेसणाए अज्झयणम्मि (1) गवेसणा (2) गहणेसणा गासेसणा इमा तिविह–एसणाए विवेयणं अत्थि। तम्मि सचित–विहीण–आहारं एसणिज्ज भासिओ।

भिक्खापरीए दोसा – जिणसुत्तेसुं आगमेसुं च आहाकम्मे, उद्देसिये, पूइकम्मे, मीसजाए ठवणे, पाहुडियाए, पाओअरे, कीए, पामिच्चे इच्चाइ–वियालीस–दोसाणं विवेयणं अत्थि। तेसिं दोसाणं णिवारणं किच्चा मियमेसणिज्जं इच्छे। एसणासमिईए पिण्डवायं गवेसए। तं जहा –

इसणा समिओ लज्जू, गामे अणियओ चरे।
अप्पमत्तो पमत्तेहिं, पिंडवाये गवेसए।।

भिक्खाचरियाए विवेगो – विवके–सील–समणा, पण्णवंता साहू या साहगा भिक्खाचरियाए खभं धारेज्ज, मज्जयं णिक्खवेज्ज, अज्जयं चरेज्ज, मणसा वयसा कायसा सदेव संजम–तव–चाग–पुव्वगं समणत्तणं पालेज्ज। समणत्तणम्मि णिम्मवित्ती ण हवेज्ज –

अदीणे वित्तिमेसेज्जा, न विसीएज्ज पंडिए।
अमुच्छिओ मोयणम्मि मायन्ने एसणारए।।–(दसवै. 5/239)

भारस्स जाआ मुणी भुंजएज्जा– आहारस्स एसणा वि संजमभारं हेउं करेज्जा। जे भिक्खू या भिाक्खुणी संतुट्ठी य संजमी हुंति ते संतोसओ वित्तिं करेंति। ते "पक्खी पत्तं समादाय, णिर वेक्खो परिव्वए"। संजमी साहगा णाणी मुणी णिरवेक्खा हुंति, ते पक्खि व्व चरेंति। णीरसं आहारं संजए भुंजिज्ज।

अलाभुत्ति न सोएज्जा – भिक्खू वा भिक्खणी सया हि मज्जाणुसारं निद्दोस –आहारं अलाभे त्ति ण सोएज्जा, ण सोगं करेंति। ते तवो त्ति अहियाए' मुणिऊण णिच्चं अलोलुवी अगिद्धी वि हुंति। तं जहा –

अलोले न रसे गिद्धे, जिब्भादंते समुच्छिए।
न रसट्ठाए भुंजिज्जा, जवणट्ठाए महामुणी।। (उत्त. 35/15)

अओ साधगमुणी अवगणाणं चइत्ता आहार इच्छे। तं जहा।

सिक्खिऊण भिक्खेसणसोहिं, संजयाण बुद्धाण सगासे।
तत्थ भिक्खु सुप्पणिहि–इंदिए तिव्व–लज्ज–गुणवं विहरेज्जासि।।

5. खामेमि सव्वजीवा

जत्थेव सया संती, सहिस्णुतं, णेहो, कारूण्णं मित्तिभावं च तत्थेव खमा हवइ। खमा परोप्परं समभावं उप्पज्जेति। संती जाइ। इमत्तो अण्णेसिं मणस्स जएज्जा, अण्णेसिं कुवियाराणं विरोहजण्ण–जीवणं स समेज्जइ।। कडुत्तं, वइरं, विरोहं पडिसोहं च सम्मएज्जा।

महाराणा णाणीजण खमा सीला हुंति। ते अण्णेसिं दोसाणं दिट्ठी कया वि ण देंति। ते सव्वे जीवाणं सव्वे सत्ताणं, सव्वे पाणाणं भूताणं च णियसरिचछमेव मण्णंते। ते कोहाओ विप्पमुत्ता हुंति। ते पियं अप्पियं संतीए सहेंति। जहोत्तं– पियमप्पिं सव्वतितिकखएज्जा। (उत्त. 21/15) जे खमा सीला जणा हुंति ते धम्मे थिर–चितं होऊण समभाव–पुव्वगं चिंतेंति।

खामेमि सव्वजीवा, सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्वभूएसु, वेरं मज्झं न केणइ।।

एरिसा एव तेसिं पउत्ती, अवि तु ते चिंतेंति–जे जणा अण्णेसिं अवराहं, दोसाणं कोहभावाणं च ण खमेंति, ण तेसिं दोसार्ण मण्णिऊण ण खएंति ते मित्तत्तणं सेउं तुट्टेंति। जम्हा तेसिं विगास–पहो वि अविरूज्झो होइ। जणाणं च आवस्सगं अत्थि अण्णेसिं दोसाणं, अण्णेसि अवराहाणं विमुंचिऊण गुणावं हि सरेज्ज। सज्जणा भाणुसमा हुंति। ते तेंज देंति, अंधयारं हणेंति। दोसाणं आच्छादएंति, गुणाणं पगडएंति। कहेज्जइ–

जसं संचिणु खंतिए– खमाभावेण जसं संचिणु। जे मुणी या णाणी होंति ते पुढविसमा अत्थि। जहा पुढवी सव्वं सहजरूवेण सहेइ तहा मुणी साहगा सज्जगा वि 'पुढविसमो' हवेज्जा।

खंतिएणं जीवे परिसहे जिणइ– जे जण खंतिं धारंति, तेणं खंतिएणं परिसहाणं वि जिणेंति। पासविंग–सत्तीणं उवसमेंति। मणं समभावे कुणंति। सव्वेसिं जीवरासीणं पडि धम्मणिहिअ–चित्तेण सव्वे खमावइत्ता सव्वेसिं खमामि एरिस–भावणाजुत्ता ते 'वेरं मज्झंण केणइ' अस्स भावस्स धारेंति।

6. समियाए धम्मे

आयारंग–सुत्तसस देसणाए इणं वयणं अत्थि "समियाए धम्मे आरिएहि पवेइए" आरिय–पुरिसेहिं, समण–भगवंतेहि आइरिएहिं समत्तं, समभावं, समित्तं, समिअं, समं च धम्मो भासिआ/पण्णत्ता। जत्थेव समिया होइ तत्थेव सव्वेसिं किरियाणं हियस्स भावणा होइ।

धम्म–देसणम्मि धम्मस्स अणेगणि लक्खणाणि कियाणि। दयाविसुद्धो धम्मो, रयणत्तयं च धम्मो, दंसणमूलो धम्मो, अहिंसा धम्मो, संजमों धम्मो, तवो धम्मो य। चारित्तं खलु धम्मो वि पण्णतं। जत्थेव दंसण–णाण–पहाणाओ चारित्तं हवइ तत्थेव समो हवइ। समो समभावो समत्तो समत्तो य मोहक्खोहविहीण–अप्पम्मि हवइ। अण्णम्मि– खमा–अज्जव–मज्जव–सच्च–सोच–तव–चाग–अकिंचण–बंहचेरं दसविहो धम्मो पण्णत्तो।

मूलत्ता धम्मो दुविहो– सुयधम्मे चेव चारित्त धम्मे चेव। (स्थानां 2/1) तिविहो–सम्मदंसण–णाण– चरित्ताणि। चउविहो–खंती मुत्ती मुत्ती अज्जवे मद्दवे। (स्था. 4/4) वि अत्थि। किण्णु जो धम्मो समभावं–पदेइ सो धम्मो समियाए धम्मो। दसवेयालयम्मि धम्मस्स एस सरूवो – धम्मो मंगलमुक्कि ट्ठं अहिंसा संजमो तवो।

धम्मो दीवो–जरा मरणवेगेणं, वुज्झमाणाण पाणीणं।
धम्मो दीवो पइट्ठा य गई सरणमुत्तमं।।(उत्त. 23/68)

धम्मस्स समायरणेणं उत्तमा गई, उत्तमं सरणं उत्तमो तवो संजमो य अहिंसा वि उत्तमा। जे जण धम्मं कुणेंति तस्स रयणीओ सफलता जंति। जे जण अधम्मं कुणेंति तस्स रयणीओ विफला जंति। अओ जं सेयं समाचरेंति। तं सोच्चा अहिंसा संजमं तवं खंतिं च आराहएंति। तं जहा–

जं सोच्चा पडिवज्जंति, तवं खंतिमहिंसयं। (उत्त 3/81)

दिव्वं च गइं गच्छंति चारित्ता धम्मारियं–ये आरिया, साहगा य सम्मं धम्मं आचरेंति, ते दिव्वं गई च पत्तेंति।

धम्मस्स विणओ मूलो– पण्हवागरणम्मि पण्णतं– पिणओ वि तवो तवो पि धम्मो। जत्थ. विणओ मूलम्मि होइ तत्थ तवो हवइ। तवेण उज्जुभावो हवइ। जहोतं–

"सोही उज्जुअभूयस्य, धम्मो सुद्धस्स चिट्ठई।" (उत्त. 3/12)

सरलप्पणम्मि सोही हवइ, सुद्धी हवइ। सुद्धप्पणम्मि एव धम्मो थिरो जाइ। तम्हा धम्मं चर! सुदुच्चरं। जो धम्मो आचरणम्मि दुच्चरो अत्थि सो समियाए आचरणेणं च सुदुच्चरो वि जाइ।

मेहावी जाणिज्ज धम्मं– जे णाणी, मइमंता, पण्णावंता या साहगा अत्थि ते 'समियाए धम्मो' मुणिऊण माणुसत्तणं मूलं धम्मं आराहए। पणित्तचित्तम्मि ठिरम्मि सो धम्मो णिव्वाणमभिगच्छइ। अओ जो धम्मो जीवाणं समियं भावं उपज्जेइ तं धम्मं आचरेज्ज।

कोहो णियसस परस्स घातस्स अणुवगारस्स वियारेण उप्पज्जइ। जो कूरत्तणं परिणामं जम्मेइ। कोहो अप्पीई परिणाओ अत्थि, जो पीइं पणस्सए। सच्चं सीलं विणयं चवि हणेज्ज। पण्हवागरणम्मि उत्तं–कुद्धो चंडिक्किओ मणूओ

आलियं भणेज्ज, पिसुणं भणेज्ज, फरूसं भणेज्ज, अलियं–पिसुणं–फरूसं–भणेज्ज, कलहं करेज्जा, वेरं करिज्जा, विकहं करेज्जा इच्चाई। सो सच्चं सीलं विणयं हणेज्जा।

कोहो पीइं पणासए– कोहो अग्गी समा अत्थि, तत्तो वि भीसणो। जहा अग्गी जणं जालेज्जइ। जो तस्स जलणम्मि आगच्छइ सो अवसं च आच्छेज्जइ। कोहस्स दावाणलम्मि कोवंतो/रोसंतो जलेइ/डहेइ। सो जइ खमाओ भावितो अत्थि। खंतीइ भाविओ भवइ अंतरप्पा संजय–कर–चरण –णयण–वयणो सूरो सच्चज्जवं संपण्णो।

अवसमेण हणे कोहं– कोहेण माणसिग–दुक्खं जाएज्ज। तं कोहं उवसमेण हणेज्ज। कोहणिग्गहेणं च खमासीलत्तणं च उप्पज्जइ। खमाए मित्ती। जीवाणं पडि सम्मभावणा जाएज्जा। जणेसुं एसा भावना उवएज्जए–

सव्वे पाणा पिआउआ सुहसाया दुक्खपडिकूला अप्पियवहा।
पियजीविणो जीविउकामा, सव्वेसिंह जीवियं पियं।। **(आ. 2/2/3)**

कोहस्स कारणाणि– चउहिं ठोणहिं कोहुप्पति सिया–तं जहा– (1) खेतं पडुच्च (2) वर्त्थु पडुच्च (3) सरीरं पडुच्च (4) उवहिं पडुच्च।

चउपइट्ठिए कोटे पण्णत्ते – (1) आय – पइट्ठिए (2) परपइट्ठिए (3) तदुभपरट्ठिए (4) अप्पइट्ठिए। जे कोहदंसी से माणदंसी–अप्प–साहगो रोसचिहीणो होइ सो णिरंतरं जणं पडि णेहं करेइ। किण्णू जे कोह दंसी से माणदंसी अहंकारी वि होइ।

कोहो अप्प–विकारो–कोहो अप्पस्स अंतरिक–परिणामो वि अत्थि जेणं च जाएज्ज सत्तिहीणत्तणं दुव्वलत्तणं च। अओ हम्ममाणो व कुप्पेज्जा वुच्चमाणो ण संजले। णिच्चं तु खंतिं सेविज्ज पंडिए। साहगो मुणी सावग–साविगा कोहं णासिउं सव्वेसिं जीवाणं मित्ति–भावं कुणेज्ज।

7. पण्णा समिक्खए धम्मं

जे पण्णावंता बुद्धिमंता य होंति ते धम्मस्स समिक्कखए। जे पण्णावंता होंति ते 'सव्वेसिं जीवियं पियं' भावणाए कुणेंति। पण्णावंता ते एव होंति जे सयस्स/अप्पस्स दोसाणं, अप्पाणं च हीणत्तणं च पस्सइ। तेसुं च संसोहणं करेउं जण्णसीला हवेंति।

एवं खु नाणिणो सारं– णाणिणो सारो णाणिणो गुणो सव्वेसिं जीवाणं रक्खणं च। णाणस्स पण्णावंतस्स लक्खणो 'पढमं णाणं तओ दया' (दस. 4/10) अत्थि। जहा उत्तमम्मि आसम्मि समारूढो अस्सवाहगो सूरो णंदि घोसेणं च परक्कमी होइ तहा पण्ण सीलो णाणेण समागओ सूरो होइ। सो णिय–णाणेणं जो पमासं कुणेइ सो इह जम्मम्मि य परजम्मम्मि य पगासए।

णाणेण विणा न हुंति चरमगुणा– णाणी णाणेण हि राजए। तेणं णाणेणं विणा सेट्ठगुणा ण राजए। णाणिस्स णाणं उवजोगो अत्थि णियं च परं च पगागए। णाणी/पण्णावंतो दीवसमो होंति। तो तमसो मा जोइगमो' भावं उप्पज्जइ।

णाणी तो पमायए कया वि – जो णाणी होइ सो पमायं वि करेइ। तस्स णाणे दंसणं सत्ती, जाणणं णिरक्खणं च अपुव्वसत्ती होइ।

पण्ण हवंति धीरा – जो पण्ण हवेंति ते धीरा वि। अपण्णा धीरा ण। ते न कम्मुणाा कम्म खवंति बाला। कण्णाणी अम्मलीला ण हवेंति, ण ते कम्माणं खवेंति। णाणी कम्माणं खवेंति उवसमेंति।

सव्वेसिं णाणं णाणीहिं देसियं – पंचविह – णाणं णाणीहिं भासियं। दब्वाणं गुणाणं च पज्जवाणं च देसियं। धम्मं अधम्मं गइं अगइं च वि देसिय।

सोच्चा जाणइ कल्याणं–णाणी धम्मं धम्ममग्गं धम्म–कल्याणकारी गुणं च सोच्चा जाणइ। सो चिंतइ णिच्चं–

एक्को हु धम्मो णरदेव! ताणं न विज्जइ अन्नमिहेइ किंचि। संजमो तवो अहिंसा परमो धम्मो' अणुचिंतइ सया सम्मणाणं सम्मदंमणं सम्मचारित्तं च समिक्खए। सो समिक्खए दयाकिसुद्ध धम्मं च।